P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-2, November-2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

काश्मीर समस्या : कल, आज और कल (लोकतान्त्रिक स्वायत्तता के विशेष सन्दर्भ में)

राजेश कुमार शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
रूधौली, बस्ती, उ0प्र0, भारत

सारांश

काश्मीर समस्या आज देश के समक्ष एक गंभीर चुनौती है। इसे लेकर भारत–पाकिस्तान के बीच कई युद्ध हो चुके हैं। काश्मीर घाटी वर्षो से लहूलुहान और यहॉ के आम लोग अपने भविष्य को लेकर दहशतजदा है। इस हिमालयी सूबे को लेकर लड़ते झगड़ते दोनों देश बीच–बीच में शान्ति वार्ता का दौर शुरू करते तो हैं लेकिन आजादी के लगभग 70 वर्षों के बाद भी काश्मीर मसले की समस्या और उसकी जटिलता बरकरार है। मुझे प्रारम्भ से ही लगता है कि काश्मीर समस्या को सुलझाने के लिए इसे ठीक से समझने की जरूरत है। दोनों देशों की हुकूमतों के लिए यह उनके राष्ट्रीय हितों और उससे भी कहीं अधिक उनके अपने अहम् का सवाल बना रहा है। काश्मीर और काश्मीरियों के दृष्टिकोण से मसले को समझने और उसे हल करने की कोशिश कम ही हुई है। कुछ कमियॉ काश्मीरी नेताओं की भी रही जिन्होंने समय–समय पर काश्मीरी हितों को नजरंदाज कर मसले को उलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जबकि समय–समय पर कई समाजशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और इतिहासकारों की तरफ से काश्मीर मसले को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के महत्वपूर्ण प्रयास हुए हैं।

मुख्य शब्द : साम्प्रदायिकता, स्वायत्तता, विभाजन, राष्ट्रीय एकता, आतंकवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्र, अलगाव, शान्ति, क्षेत्रीय विकास, उत्पीड़न आदि।

प्रस्तावना

काश्मीर का भारत में विलय किसी सामान्य परिस्थिति में नहीं हुआ। अंग्रेजों की साजिश, नेहरू का अड़ियल रूख और जिन्ना द्वारा सांप्रदायिक अवस्थिती अपनाए जाने के कारण भारत का विभाजन सांप्रदायिक आधार पर किया गया था। काश्मीर एक मुस्लिम बहुल राज्य था और वहॉ का शासन एक हिन्दू राजा के हाथ में था। काश्मीर ऐतिहासिक रूप से सांप्रदायिकता से काफी हद तक मुक्त रहा। काश्मीर की जनता के बीच जिस नेता की सर्वाधिक पकड थी वह थे शेख अबदुल्ला जो सांप्रदायिक आधार पर पाकिस्तान में शामिल होने को लेकर सशंकित थे और एक इस्लामिक सिद्धान्तों पर बने राज्य में शामिल होना नहीं चाहते थे। काफी चिन्तन–मनन और राजनीतिक विचार विमर्श के बाद 1949 ई0 में काश्मीर भारतीय संघ में इस शर्त पर शामिल हुआ कि वैदेशिक मसलों, सुरक्षा और मुद्रा चलन के अतिरिक्त भारतीय राज्य काश्मीर की स्वायत्तता को बरकरार रखेगा और अन्य सभी मसलों पर निर्णय लेने की शक्ति काश्मीर के सरकार के हाथों मे होगी जिसके लिए भारतीय संविधान में विशेष धारा 370 को शामिल किया गया।

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारत और पाकिस्तान के विभाजन की सारी जिम्मेदारी जिन्ना के सिर डाल दी जाती है, लेकिन कम ही लोग जानते है कि क्रिप्स मिशन के बाद जिन्ना ने अलग पाकिस्तान की मॉग को छोड़ने का प्रस्ताव नेहरू के सामने रखते हुए कहा कि एंक ऐसे भारतीय संघ में रहना उन्हे मंजूर है जिसमें मुस्लिम बहुल राज्यों के सापेक्षिक स्वायत्तता हो लेकिन एक मजबूत केन्द्रीय राज्य मशीनरी के पक्ष में खड़े नेहरू ने इस प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। इस मसले पर नेहरू के गॉधी के साथ भी असहमति थी। सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू हर हालत में एक मजबूत केन्द्र चाहते थे चाहे इसके लिए विभाजन का दंश ही क्यों न झेलना पड़े।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र में हमने एक तरफ काश्मीर की ऐतिहासिक सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर तथा दूसरी तरफ लोकतान्त्रिक स्वायत्तता के विशेष सन्दर्भ में काश्मीर समस्या को समझने का प्रयास किया है। वस्तुतः काश्मीर समस्या आज भारत के लिए एक गंभीर चुनौती बन कर उभरी है और यह जीवन–मरण के साथ–साथ राष्ट्र प्रतिष्ठा का विषय बन गया है। यह भारत की धर्मनिरपेक्षता की नीति की कसौटी है। प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से हमने काश्मीर समस्या की गहराइयों को जानने समझने का प्रयास किया है और स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब दोनों सरकारें एक रोडमैप तय करें जिसमें काश्मीर के लोगों से संवाद का तत्व प्रमुखता से शामिल हो और अपने अन्तर्विरोधों से उपर उठकर इस लक्ष्य की ओर प्रगति सुनिश्चित करें।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध–पत्र हेतु शोधकर्ता की पद्धति ऐतिहासिक, समालोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक रही है। ज्ञात तथ्यों तथा इस विषय पर उपलब्ध पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों का विश्लेषण और आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए प्राप्त परिणामों का सत्य की कसौटी पर परीक्षण करने का प्रयास किया गया है। शोध अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु प्रस्तुत अध्ययन की विषय और सामग्री की होती है। इस विषय पर प्राथमिक सामग्री के रूप में लेखकों और इतिहासकारों की विभिन्न रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में मौजूद है जिसका प्रयोग इस शोधपत्र में किया गया है, इसके अतिरिक्त समाचारपत्रों तथा पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न सम्पादकों के विचारों को विश्लेषण करते हुए सामग्री एकत्र कर उसका प्रयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में किया गया है।

साहित्यावलोकन

काश्मीर समस्या : कल, आज और कल (लोकतांत्रिक स्वायत्तता के विशेष सन्दर्भ में) पर किये गये इस शोध का उद्देश्य तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है, जैसे –

जगमोहन द्वारा रचित कृति ''माई फ्रोजेन टरबुलेन्स इन काश्मीर'', द्वितीय संस्करण 1992 में जगमोहन के दो बार जम्मू–काश्मीर के राज्यपाल रहते हुए जो घटनाएँ घटी और उनका जो विश्लेषण रहा उसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

''द वैली ऑफ काश्मीर'' (1895) में रोपर लारेन्स ने काश्मीर के भूगोल और संस्कृति का विशद वर्णन किया है और साथ ही साथ विशेष रूप से डोगराओं के शासनकाल में काश्मीर को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है उसकी विस्तृत व्याख्या की है। यह पुस्तक काश्मीरी जनता की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है।

उर्मिलेश की पुस्तक ''काश्मीर विरासत और सियासत'' (2006) में काश्मीर के राजनीतिक दलों और उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण है। काश्मीर की लोकतांत्रिक स्वायत्तता और मानवाधिकारों पर भी इस पुस्तक में वृहद विश्लेषण किया गया है।

माजिद हुसैन की ''सिस्टमेटिक जियोग्राफी ऑफ जम्मू एण्ड काश्मीर,'' संस्करण 2000 जम्मू–काश्मीर की भौगोलिक परिस्थितियों का सुन्दर वर्णन करती है।

रविन्द्र जुगरान ने अपनी पुस्तक ''रक्तरंजित जम्मू काश्मीर'' (2009) में अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर जम्मू–काश्मीर में नासूर बने आतंकवाद के सभी पहलुओं को रेखांकित किया है। इस पुस्तक में लेखक ने राजनीतिक और सामाजिक संगठनों की भूमिका का निष्पक्ष और तथ्यों सहित वर्णन करके सच्चाई को प्रकट करने का साहसिक कार्य किया है।

राजकिशोर द्वारा सम्पादित पुस्तक ''काश्मीर का भविष्य'' (1994) आज के प्रश्न श्रृंखला की पाँचवी पुस्तक है जिसमें स्वतन्त्र भारत की अलगाववाद की चुनौती और काश्मीरी जनता की स्वायत्तता की माँग का गंभीरता से विश्लेषण किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि 2009 के बाद इस शीर्षक पर जो भी कार्य किये गये है वह मेरे संज्ञान में नही आये है।

काश्मीर का सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास

काश्मीर के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के इतिहास की जानकारी देने वाला पहला प्राचीन ग्रन्थ कल्हण द्वारा रचित ''राजतरंगिणी'' है। कल्हण के अनुसार श्रीनगर का निर्माण अशोक के कार्यकाल में ही हुआ। कुषाण शासक कनिष्क के शासनकाल के दौरान अफगानिस्तान, काश्मीर और मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और वहाँ अनेक बौद्धविहार तथा दार्शनिक संस्थान खुले। कर्मकाण्डी हिन्दू पद्धति से त्रस्त काश्मीरी जनता ने इस धर्म को स्वेच्छा से स्वीकार भी किया। संघभूमि, विमलाक्षा, कुमार विजय जैसे विद्वान बौद्ध भिक्षु काश्मीर के ही थे जिन्होंने चीन और मध्य एशियाई देशों में अपने दर्शन और विचारो का प्रचार–प्रसार किया। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग की भारत यात्रा के दौरान काश्मीर में करकोटा वंश का राज चल रहा था। इसका सुप्रसिद्ध शासक ललितादित्य था जिसने काश्मीर पर लगभग 35 वर्षो तक राज किया। यद्यपि वह विष्णुभक्त था परन्तु वह अन्य धर्म के प्रति अनुदार नहीं था। 9वी शताब्दी में इस वंश की समाप्ति के बाद यहाँ अवन्तिवर्मन के नेतृत्व में एक नये राजवंश की स्थापना हुई जिसके अधीन काश्मीर ने काफी प्रगति की। इस वंश की समाप्ति जयादेवी नामक एक महिला ने अपने सहयोगियों के साथ की थी लेकिन यह राजवंश ज्यादा दिनों तक राज नहीं कर सका। बाद के दिनों में पुंछ के लोहरिन राजा की बेटी डिड्डा ने काश्मीर पर लगभग 50 वर्षो तक शासन किया। तुंगा नामक उसका एक प्रेमी बाद के दिनों में ताकतवर बनकर उभरा। डिड्डा की मृत्यु अत्यन्त रहस्यमय परिस्थितियों में हुई। 11वी शताब्दी के शुरूआती वर्षो में महमूद गजनबी ने यहाँ दो बार आक्रमण किया लेकिन वह काश्मीर पर अधिकार करने में असफल रहा। बाद के दिनों में जया सिन्हा नामक राजा ने काश्मीर की बिगड़ती माली हालत को सुधारने की भरपूर कोशिश की। काश्मीर में इस्लाम की मौजूदगी के प्रमाण 13वी शताब्दी से ही मिलने लगते हैं। बुलबुलशाह के काल में काश्मीर के बड़े इलाके में मुस्लिम बादशाह का हुक्त चलता था। चंगेज खॉ ने कई बार प्रयास किया लेकिन वह संतो और

सूफियों की धरती काश्मीर घाटी में दाखिल नहीं हो सका। इधर पीर पंजाल और जोजिला–फोतुला की हिमाच्छादित चोंटियों के सामने रक्तरंजित तलवार की ताकत हर बार व्यर्थ हो जाती थी लेकिन एक लद्दाखी आदिवासी सरदार के युवा बेटे रिनछिन ने जोजिला पार कर काश्मीर की सत्ता पर कब्जा कर लिया और 14वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में कई वर्षो तक शासन किया। काश्मीर के पण्डितों ने बाहर से आकर राजा बने रिनछिन की जाति बिरादरी को उच्चवर्णीय न पाकर उसके हिन्दू धर्म प्रवेश पर रोक लगाई। धर्म के वर्चस्व का यह अनोखा उदाहरण काश्मीर में ही मिलता है। हिन्दूओं के इस व्यवहार से निराश होकर और बुलबुलशाह के प्रभाव में आकर वह मुसलमान बन गया। सूफी दर्शन से ओत–प्रोत काश्मीर का इस्लामी समाज उसे पसन्द आया और उसने अपना नया नाम रखा– सदरूद्दीन। यही से काश्मीर में मुस्लिम सत्ता अस्तित्व में आई। लेकिन रिनछिन की मौत के बाद उसके बेटे के बजाय उदयनदेव का राजा बनाया गया। सत्ता हस्तान्तरण के इस नाटकीय घटनाक्रम में शाह मीर और कोटा रानी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उदयनदेव के बादशाह मीर के सहयोग से कुछ दिनों तक कोटा रानी का राज चला लेकिन फिर शाह मीर राजा बन गया और उसने कोटा रानी को अपनी पत्नी घोषित किया। सत्ता में आने के बाद शाह मीर ने अपना नाम शम्सुद्दीन रखा और मुगलों के आगमन के समय तक इस सुल्तान के वंशजों का राज काश्मीर में चला।

इन दो सौ सालों में काश्मीर के अन्दर इस्लाम को फलने–फूलने का अत्यधिक अवसर मिला। इसी क्रम में शाही खॉ उर्फ बुडशाह का कार्यकाल काफी लोकप्रिय रहा। बादशाह के रूप में वह काफी उदार और लोकप्रिय था। लगभग 50 वर्षो तक उसने काश्मीर में राज किया और उसे मध्यकालीन काश्मीर का स्वर्णयुग माना जाता है। इन्ही दिनों काश्मीर घाटी में एक नये ढंग की मिली–जुली संस्कृति का विकास हुआ। काश्मीर में मुगलों का प्रवेश 1586 ई0 में तब हुआ जब अकबर के एक सेनापति कासिम शाह ने अपनी फौजी टुकडी के बल पर श्रीनगर को कब्जे में लिया। इस प्रकार काश्मीर पर दिल्ली की सत्ता स्थापित हुई। बाद के लगभग 350 सालों तक काश्मीर पर मुगलों, अफगानों, सिक्खों और डोंगराओं का राज रहा। महाराजा रणजीत सिंह को 1819 ई0 में काश्मीर की बागडोर मिली। अन्तिम अफगान गवर्नर सरदार मोहम्मद अजीम खॉ ने कई काश्मीरियों को अपना सलाहकार बनाया जिसमें बीरबल धर का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। बीरबल धर ने ही लाहौर दरबार जाकर महाराजा रणजीत सिंह को काश्मीर में हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित किया। इसमें जम्मू के डोगरा सरदार गुलाब सिंह ने उनका सहयोग किया। महाराजा रणजीत सिंह की काश्मीर विजय के साथ ही अफगानों के 67 वर्षीय क्रूर शासन का अन्त हुआ। गुलाब सिंह महाराजा रणजीत सिंह की सेना में एक कमाण्डर थे और अंग्रेजो से भी उनके अच्छे सम्बन्ध थे। अफगानों से जलालाबाद की लडाई में उन्होने ब्रिटिश शासकों की तरफ से कमान संभाली थी। लाहौर–दरबार ने ही उन्हे इस मिशन पर भेजा था लेकिन गुलाब सिंह ने इस अवसर का लाभ उठाया और अंग्रेजी शासकों से अच्छे सम्बन्ध बना लिए। जब सिक्खों की अंग्रेजो से भिड़ण्त हुई तो गुलाब सिंह ने सिक्खों का साथ देने से साफ मना कर दिया। इससे वह अंग्रेजो के काफी नजदीक आए और अन्ततः गुलाब सिंह राजा बने तथा 1846 ई0 में काश्मीर की रियासत उन्हे सौंपी गई। इसके लिए अंग्रेजों को उन्हे 75 लाख नानकशाही मुद्रा देनी पड़ी और इसके बदले में उन्हे लगभग 84 हजार बर्गमील में फेले 21 लाख आबादी वाले सूबे का महाराजा बनाया गया। सत्ता हस्तान्तरण के इस अनोखे फार्मूले को ''अमृतसर की सन्धि'' कहा जाता है। इस प्रकार डोगरा राज भारत की आजादी के बाद अक्टूबर 1947 ई0 तक प्रभावी रहा जिसका विधिवत् अन्त 1948 ई0 में हुआ, जब शेख अब्दुल्ला को 5 मार्च की सुबह सूबे की अंतरिम सरकार का प्रमुख बनाया गया। लगभग 350 साल बाद किसी काश्मीरी को इस सूबे की बागडोर सौपी गई।

जम्मू–काश्मीर साझा राष्ट्रीय एकता और संस्कृति का अनोखा उदाहरण है। कभी यहॉ संस्कृत और प्राकृत के रचनाकारों ने अपने सृजन कर्म से समाज को प्रभावित किया तो कभी यहॉ सूफी–सन्तों की वाणी ने लोगों का मार्गदर्शन किया। बौद्ध दर्शन और चिन्तन की एक समृद्ध परम्परा ने भी काश्मीरी समाज और इसकी मनीषा को नया परिपेक्ष्य दिया। फारसी भाषा और उसकी संवेदना से इसे नफासन मिली। मुसलमान, बौद्ध, हिन्दू आदि यहॉ सदियों से साथ रहते आए है। इस मामले में काश्मीर भारत की बहुरंगी, बहुजातीय और बहुधर्मीय सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना का जीवन्त उदाहरण है।

विभाजन और अधिमिलन से गुजरता काश्मीर

लम्बे विवाद, बहस और संघर्ष के बाद जून 1947 ई0 तक यह बात आईने की तरह साफ हो गई थी कि सत्ता हस्तान्तरण के समय दो केन्द्रीय सत्ताओं (भारत और पाकिस्तान की सरकारों) को बागडोर सौपी जाएगी। यही प्रस्ताव ''भारतीय स्वाधीनता अधिनियम'' का आधार बना, जिसकी पुष्टि 18 जुलाई को ब्रिटिश संसद और सम्राट ने कर दी थी और 15 अगस्त को इसका विधिवत एलान और कियान्वयन हुआ। आजादी के बाद काश्मीर के राजनीतिक भविष्य को लेकर तरह तरह की अटकलें लगाई जाने लगी। इसका मुख्य कारण महाराजा हरिसिंह और उनके प्रधानमंत्री रामचंद्र काक का रवैया था जो अपनी रियासत को भारत में विलीन करने के पक्ष में नहीं थे। महाराजा इस मुद्दे पर उतना खुलकर नहीं बोलते थे पर उनके मुख्य सलाहकार पण्डित काक ने कई बार कहा कि काश्मीर अपने वजूद को किसी और राष्ट्र को नहीं करना चाहेगा। महाराजा के उपप्रधानमन्त्री बी0एल0 बत्रा ने 13 अक्टूबर 1947 को साफ शब्दों में कहा कि – काश्मीर अपना स्वतन्त्र बजूद बनाए रखेगा। इसके पहले 1946 ई0 में जब भारत की संविधान सभा गठित हुई तो महाराजा हरि सिंह ने उसमें शामिल होने से इन्कार किया था। 10 मई 1947 ई0 को मुस्लिम कान्फ्रेन्स के कार्यकारी प्रधान चौधरी हमीदुल्ला खॉ ने प्रेस कान्फ्रेन्स में कहा था कि महाराजा को जल्द से जल्द स्वतन्त्र और सार्वभौम काश्मीरी राष्ट्र की घोषणा कर देनी चाहिए। लेकिन शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने अलग काश्मीरी राष्ट्र की धारणा का समर्थन नहीं किया। उनकी मुख्य चिन्ता घरेलू स्तर पर

निरंकुश डोंगरा शासकों से मुक्ति हासिल करने की थी। शेख ने मई 1946 ई0 में ही ऐलान कर दिया था कि – ब्रिटिश हुकूमत के निर्णायक समापन का मतलब होगा, उन शासकों का अन्त जो साम्राज्यवाद के चाकर रहे और जो लोगों को उनकी इच्छा के विरूद्ध बॉधे रखने के लिए उन पर जबर्दस्ती थोपी गई। मैने लोगों से यह भी कह दिया है कि वे एक–एक रूपये से 75 लाख रू0 इकट्ठा करें ताकि वर्तमान महाराजा हरि सिंह को यह रकम वापस कर दें, जो वर्षो पहले उनके दादा ने काश्मीर की रियासत पाने के लिए अंग्रेजों को दी थी। हमें यह प्रयास करना है ताकि हम उस रकम को लौटाकर काश्मीर की आजादी अब हासिल कर सकें। लेकिन महाराजा हरि सिंह के ज्यादातर सलाहकार स्वतन्त्र और सार्वभौम काश्मीरी राष्ट्र के पक्ष में थे। महाराजा की भी यही इच्छा थी। भारत में विलय की नौबत में नेशनल कान्फ्रेन्स का पलड़ा भारी पड़ता, इसलिए भी वह विलय के विरोधी थे। लेकिन बाद के घटनाक्रम ने उन्हे अधिनियम की मंजूरी के लिए बाध्य कर दिया। जम्मू–काश्मीर का भारत में पूर्णरूपेण विलय नही, अधिमिलन हुआ। अनुच्छेद–370 के प्राविधान का यह एक प्रमुख आधार बना।

देश के पहले प्रधानमन्त्री के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने कई बार कहा कि काश्मीर के भविष्य का फेसला वहॉ की अवाम को करना है। 26 अक्टूबर 1947 को जब आजाद भारत की सेना की टुकड़ी पहली बार श्रीनगर हवाई अड्डे पर उतर रही थी, प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने उस दिन भी कहा था– मै यह साफ कर देना चाहता हूँ कि इस इमरजेन्सी में हम काश्मीर की सहायता कर रहे है। लेकिन ऐसा करके हम काश्मीर की जनता पर कोई एहसान नहीं कर रहे है।

लोकतन्त्र के आईने में स्वायत्तता

सन् 1953 ई0 से वर्तमान दशक के बीच जम्मू–काश्मीर में अनावश्यक राजनीतिक दखलंदाजी नही की गई होती और सूबे की स्वायत्तता को अक्षुण्ण रखा गया होता तो क्या आज देश के समक्ष काश्मीर जैसी गंभीर समस्या होती? काश्मीर में आज के हालात के लिए केवल पाकिस्तान ही नही, अतीत के वे विवादास्पद राजनीतिक फैसले भी जिम्मेदार है, जिनसे राज्य की स्वायत्तता और राजनीतिक समरसता क्षत–विक्षत हुई और भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राज से काश्मीरियों का मोहभंग प्रारम्भ हुआ। काश्मीर में एक बार नही अनेक बार गलतियॉ दुहराई गयी। सन् 1947–48 के दौरान वहॉ की अवाम से किये गये वायदों से लगातार मुॅह मोड़ा गया और सांवैधानिक प्राविधानों तक की धज्जियॉ उड़ाई गई। इस तरह की राजनीतिक सोच और फैसलों के पीछे काश्मीरी समाज के उन दबाव समूहों की भी उल्लेखनीय भूमिका रही, जो काश्मीर में धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक शासन और विधान की नई राजनीतिक संरचना और उसमें हिस्सेदार नई शक्तियों के अभ्युदय से भयभीत थे। इसी तरह की निहित स्वार्थी शक्तियों ने राज्य में शेख अब्दुल्ला सरकार की भूमि सुधार नीति के खिलाफ जबरदस्त दुष्प्रचार अभियान चलाया। अपने नीहित स्वार्थो पर पर्दा डालने के लिए ऐसे ही तत्वों ने काश्मीर के हालात की चिंता किए बगैर बार–बार यह नारेबाजी की– काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है।

ऐसे लोग काश्मीर के इतिहास, ब्रिटिशकालीन भारत से उसकी संबद्धता, आजादी के बाद भारत में उसके विलय और उससे जुड़े अन्य मसलों की जटिल वास्तविकता को नजरंदाज करते है। मेरी समझ से काश्मीर के मसले में स्वायत्तता सुनिश्चित की गई होती तो पाकिस्तान की तरफ से होने वाली गतिविधियों का मुकाबला करना और आसान होता। आज के सीमापार से आयातित आतंकवाद को काश्मीर के किसी कोने में आधार नही मिला होता और अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी भी इतनी असमंजस में न होती। काश्मीर को लेकर केन्द्र के योजनाकार और रणनीतिकार भी हमेशा अलग–अलग खेमों में विभाजित रहे है पर स्वायत्तता के मसले पर उनमें व्यावहारिक स्तर पर वैचारिक एकरूपता दिखाई देती थी। काश्मीर पर येन–केन प्रकरेण केन्द्र का अंकुश बरकरार रखने पर उनमें आम सहमति थी। नेहरू युग में केन्द्र की काश्मीर नीति पर प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू और गृहमंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल के दृष्टिभेद की छाया हमेशा मॅडराती रही। पण्डित नेहरू एक सीमा तक सापेक्ष स्वायत्तता का पक्ष लेते थे। सन् 1953 का समझौता और अनुच्छेद 370 का प्राविधान इसके उल्लेखनीय उदाहरण है। विलय के शुरूआती दौर में भी काश्मीर से सम्बन्धित कई मुद्दों पर उनकी राय अपने गृहमन्त्री से मेल नहीं खाती थी। पर होता वही था जिससे केन्द्र के वर्चस्व और अंकुश को बल मिले। पण्डित नेहरू सरदार पटेल द्वारा उठाये गये ऐसे मुद्दों पर खामोश हो जाया करते थे। विलय के कुछ दिनों बाद जम्मू–काश्मीर में जब शेख अब्दुल्ला को आपातकालीन शासन की सत्ता सौपी गई तो एक सवाल उठा कि राज्य में सेना और पुलिस आदि पर किसका नियंत्रण रहना चाहिए। पण्डित नेहरू यह जिम्मेदारी नई सरकार को सौपनें के पक्षधर थे जबकि सरदार पटेल का मानना था कि सेना पुलिस की कमान हस्तांतरित करने में कोई जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए और फिलहाल यह महाराजा के हाथों में ही होनी चाहिए। अन्त में उनकी ही राय मानी गई। जबकि पण्डित नेहरू इस बात को लेकर पूरी तरह आश्वस्त थे कि केवल शेख अब्दुल्ला ही जम्मू–काश्मीर को बेहतर ढंग से भारतीय संघ में रख सकते है। 13 नवम्बर 1947 को महाराजा हरि सिंह को लिखे अपने खत में उन्होने साफ शब्दों में स्वीकार किया कि – मै आपको स्पष्ट कर चुका हूँ कि काश्मीर में एक ही आदमी इस वक्त बेहतर काम कर सकता है, वह है – शेख मुहम्मद अब्दुल्ला। निश्चय ही वह सूबे के सबसे लोकप्रिय व्यक्तित्व है। वह चन्द साधारण मामलों में बहुत सारी गलतियॉ कर सकते है पर बड़े मामलों में उनके निर्णय विवेकसम्मत और सही होते है।

पर नेहरू राज में उसी शेख अब्दुल्ला का क्या हुआ, यह काश्मीर के आधुनिक इतिहास का सबसे हैरतअंगेज अध्याय है। काश्मीरी नेताओं और उनके अवाम ने जिन कारणों से भारत में शामिल होने का फैसला किया, उनमें एक बड़ा कारण द्विराष्ट्र का सिद्धान्त भी था। नेशनल कान्फ्रेन्स ने जिन्ना के इस सिद्धान्त को सिरे से

खारिज कर दिया। काश्मीर के लिए भारतीय धर्मनिरपेक्षता और लोकतन्त्र दो आकर्षक पहलू थे जो काश्मीरियों को पाकिस्तान में उपलब्ध नहीं हो सकते थे। उन्ही दिनो महात्मा गाँधी ने कहा था– भारत में धर्मनिरपेक्षता के भविष्य के लिए काश्मीर एक अग्निपरीक्षा की तरह है।

तमाम कठिनाईयों और कांग्रेस के अपने वैचारिक अंतर्विरोधों के वावजूद जवाहर लाल नेहरू ने इस परीक्षा में कामयाब होने की भरपूर कोशिश की। सन् 1952 का समझौता इस कोशिश का ही स्मारक है, स्मारक इसलिए कि समझौते के कुछ ही महीने बाद इसकी धज्जियॉ उड़ा दी गई। काश्मीरी इतिहास के इन घटनाक्रमों को देखकर कई बार इनमें तारतम्य बिठाना दुष्कर लगता है। जिस केन्द्रीय शासन ने सन् 1950–51 में शेख अब्दुल्ला का खुलकर साथ दिया 1953 तक आते–आते उसने अचानक अपना रूख कैसे बदल लिया। भूमि सुधार से लेकर राजशाही के खात्मे जैसे तमाम मसलों पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल और नौकरशाही का एक प्रभावशाली समूह शेख अब्दुल्ला के खिलाफ था पर प्रधानमन्त्री नेहरू ने नेशनल कान्फ्रेन्स सरकार के युगान्तकारी कदमों का साथ दिया।

सन् 1951 ई0 में राज्य की संविधानसभा गठित हुई जिसने लंबे विचार विमर्श के बाद जम्मू–काश्मीर के लिए एक नये संविधान की रचना की। 15 नवम्बर 1952 को युवराज कर्णसिंह को सदर–ए–रियासत बनाये जाने का एलान हुआ। सन् 1953 से 1957 के बीच भी कई महत्वपूर्ण फैसले लिए गए। काश्मीर के भारतीय संघ में विलय को सुदृढ़ करने के लिए कालान्तर में अनेक फैसले लिए गए जिसके कारण काश्मीर घाटी में आशंका भरे सवाल उठे। विलय के कारनामों के मुताबिक भारत सरकार को सुरक्षा, विदेश और संचार मामले छोडकर अन्य मामलों में हस्तक्षेप नही करना था। महाराजा हरि सिंह को अपनी सार्वभौमिक सत्ता की चिन्ता थी लेकिन काश्मीरी अवाम और उनके नेता शेख अब्दुल्ला ने करारनामे को काश्मीर और उसकी जनता की व्यापक स्वायत्तता के सन्दर्भ में व्याख्यायित किया। लम्बे विचार–विमर्श और राजनीतिक मोल–तोल के बाद यह तय हुआ कि जम्मू–काश्मीर को अनुच्छेद 370 के तहत सापेक्ष स्वायत्तता दी जायेगी। संविधान के इस प्राविधान का यहॉ तक कि श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे नेताओं ने भी विरोध नही किया। बाद में वह मंत्री पद से इस्तीफा देकर बाहर आ गये और जनसंघ नामक नई पार्टी बनाई लेकिन यहॉ यह उल्लेखनीय है कि श्री मुखर्जी ने नेहरू मंत्रिमण्डल से इस्तीफा अनुच्छेद 370 के मुद्दे पर नही, ''नेहरू–लियाकत अली समझौता'' के विरोध में दिया था।

स्वायत्तता के सन्दर्भ में केन्द्र का नजरिया शुरू से ही संकीर्ण था। मसला केवल सदर–ए–रियासत और वजीरे–आलम के नामकरण तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि सरकार के गठन से लेकर शासन संचालन के हर पहलू को दिल्ली द्वारा नियंत्रित किये जाने से काश्मीरी जनता का मानस सशंकित होता रहा। बाद की कुछ घटनाओं ने उनके शंकाग्रस्त मानस को झकझोर कर रख दिया। शेख अब्दुल्ला सरकार की बर्खास्तगी और उनकी गिरफ्तारी के विरूद्ध समूचे प्रान्त में भारी विरोध दर्ज हुआ। नेशनल कान्फ्रेन्स जैसी पार्टी को तोडकर उसके ही एक धड़े को सत्ता थमाई गई पर काश्मीरी जनता जेल में पडे शेख अब्दुल्ला के साथ खड़ी रही। कैसी विडम्बना है कि अनुच्छेद 370 के तहत् विशेष दर्जा प्राप्त जम्मू–काश्मीर से ही भारतीय संघ में राज्य सरकारों की बर्खास्तगी का निरंकुश सिलसिला प्रारम्भ हुआ। यह और भी बिडम्बनापूर्ण है कि स्वायत्तता और अनुच्छेद 370 के प्राविधानों की धज्जियॉ उडाये जाने की शुरूआत भारतीय लोकतंत्र के उस युग से हुई जिसके नायक भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से उपजे पण्डित जवाहर लाल नेहरू जैसे राजनेता थे।

बख्शी गुलाम और जी0एम0सादिक के कार्यकाल में जम्मू–काश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग बनाने का जैसा अभियान चलाया गया, उसकी कोई जरूरत ही नही थी। अगर 1975 के समझौते के बाद शेख जैसे कद्दावर नेता को श्रीनगर की गद्दी नहीं सौंपी गई होती तो घाटी के हालात तभी बिगड़ने प्रारम्भ हो गये होते लेकिन शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों ने सत्ता में आने के बाद काश्मीरी अवाम के असन्तोष पर नियंत्रण पाने की भरपूर कोशिश की। शेख अब्दुल्ला के निधन के बाद हालात फिर से बिगडने लगे। काश्मीर के प्रति ''भारत की वादाखिलाफी'' का मुद्दा काश्मीर में चर्चा का केन्द्र बन गया। राजनीति में बढती साम्प्रदायिकता, प्रशासन में बढते भ्रष्टाचार, सुरक्षा एजेन्सियों के दमन–उत्पीडन अभियान और चुनावी फ्राड ने काश्मीर घाटी को बदशक्ल कर दिया। सन् 1995 में प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव और संयुक्त मोर्चा के शासनकाल में काश्मीर की खोई स्वायत्तता पर एक बार फिर बहस छिड गई। सन् 1995 में नरसिम्हा राव ने ''स्काई इज द लिमिट'' का मुहाबरा इस्तेमाल करते हुये काश्मीर की स्वायत्तता का दायरा बढ़ाने के प्रस्ताव पर सकारात्मक चर्चा का संकेत दिया। फारूक अब्दुल्ला ने सन् 1996 के विवादास्पद विधानसभा चुनाव में स्वायत्तता को ही महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया लेकिन अपने कार्यकाल में प्रस्ताव पारित करने के अलावा वह कुछ न कर सके और न करा सके। परिणामस्वरूप सन् 2002 के विधानसभा चुनाव में सूबे में पी0डी0पी0–कांग्रेस गठबंधन की सरकार बनी। यहॉ यह कहने का यह मतलब नही है कि काश्मीरी जनता ने स्वायत्तता को ही चुनावी अभियान का केन्द्रीय मुद्दा माना था। वस्तुतः यह फारूख अब्दुल्ला की विफलताओं और राजनीतिक ढकोसलों के खिलाफ आम लोगों का आक्रोश था जो चुनाव में उनकी पराजय के रूप में सामने आया। सन् 2002 से 2014 तक काश्मीर के हालात कुछ सामान्य रहे लेकिन 2014 में केन्द्र में भाजपा के नेतृत्व में बनी सरकार के आने के बाद एक बार फिर से काश्मीर में हालात तेजी से बिगड़ते जा रहे है। लेकिन 2014 से 2016 तक सबकुछ सहज नही रहा। इस दौरान काश्मीर घाटी में पाक प्रायोजित आतंकवादी घटनाऍ काफी तेजी से बढी है और काश्मीरी युवाओं की सहभागिता और पत्थरबाजी की घटनाओं ने सरकार के सामने एक गहरा प्रश्न छोड़ दिया है। हिजबुल मुजाहिदिन के कमाण्डर बुरहान वानी के मारे जाने के बाद भड़के आक्रोश से घाटी के मौजूदा हालात और आने वाले दिनों के बारे में ठोस अंदाजा लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष

यह सही है कि स्वायत्तता का मुद्दा काश्मीर में आज बहस और विवाद के केन्द्र में नही है। आतंकवाद और आम जनता के अलगाव ने आज स्वायत्तता के धारणा और उनके व्यावहारिक पहलुओं को पृष्ठभूमि में डाल दिया है लेकिन काश्मीर में जब कभी माहौल बेहतर होगा और जनता में सुशासन की ललक जगेगी, स्वायत्तता का सवाल बहस के केन्द्र में आ ही जायेगा। अगर प्रारम्भ में ही काश्मीर की स्वायत्तता सुनिश्चित कर दी गई होती, क्षेत्रीय स्वायत्तता का सम्मान करते हुए शासन के सभी क्षेत्रो (सुरक्षा, विदेश और संचार को छोड़कर) को जम्मू–काश्मीर की सरकार के उपर छोड़ दिया गया होता तो शायद भारतीय संघ के सामने आज काश्मीर जैसी समस्या नही होती। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि अब तक परिस्थितियॉ काफी बदल चुकी है और स्वायत्तता के नारे पहले जैसे कारगर नही हो सकते। इन्हे कारगर बनाने के लिए पहले घाटी का माहौल बदलना होगा। इसके लिए भारत–पाकिस्तान के बीच शान्ति–सद्भाव की स्थापना एक महत्वपूर्ण पहलू है पर यह एकमात्र पहलू नही है। इसके लिए काश्मीर के अन्दरूनी हालात भी बदलने होंगे और काश्मीरी जनता का दिल भी जीतना होगा। उन्हे मुख्यधारा में लाए बगैर स्वायत्तता का नारा एक बेसुरा झुनझुना ही बनकर रह जायेगा। घाटी में शान्ति स्थापित करने और खासकर युवाओं को भरोसे में लेने के लिए सुविचारित दीर्घकालीक प्रयास करने होंगे और क्षेत्रीय स्वायत्तता भी सुनिश्चित करनी होगी ताकि श्रीनगर की देखरेख में जम्मू–काश्मीर और लद्दाख के लोगों को अपनी अपेक्षाओं, निजी पहचान और क्षेत्रीय विकास की संभावनाओं के अनुकूल माहौल मिल सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

जगमोहन : माई फ्रोजेन टरबुलेन्स इन काश्मीर पृ0 सं0 410, 413, 473, 509–11

जम्मू–काश्मीर फिफ्टी ईयर्स :इन्फार्मेशन डिपार्टमेण्ट, श्रीनगर,पृ0 सं0 428

पूर्व राज्यपाल जगमोहन से आजतक के पत्रकार से बातचीत पर आधारित।

01 जुलाई 2002 को अपने संगठन की कुपवाडा रैली में सज्जाद लोन के भाषण का अंश, योजना, मई 2007 पृ0 सं0 29

आर0 लारेन्स :द वैली ऑफ काश्मीर, 1895,पृ0 सं0 20

मजीद हसन : सिस्टमेटिक जियोग्राफी ऑफ जम्मू एण्ड काश्मीर, पृ0 सं0 80

उर्मिलेश : काश्मीर विरासत और सियासत, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण 2006, पृ0 सं0 15–18, 91–97

रविन्द्र जुगरान :रक्तरंजित जम्मू काश्मीर, ज्ञान गंगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009

पृ0 सं0 144, 162, 167

के0 सी0 अग्निहोत्री : जम्मू काश्मीर की अनकही कहानी, प्रभात प्रकाशन, पृ0 सं0 06, 72

राजकिशोर (संपादक): काश्मीर का भविष्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994 पृ0 सं0 80–84